ISSN: 2230-7850 IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF) VOLUME - 7 | ISSUE - 4 | MAY - 2017

INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL

सामाजिक विकास पर प्रभाव डालने वाले तत्त्व–एक समीक्षात्मक अध्ययन

मृत्युंजय कुमार सिंह
शोधार्थी, ल0ना0मिथिला विश्वविद्यालय,दरभंगा

सारांशः

प्रस्तुत शोध पत्र में किषोर बालक और बालिकाओं के विकास हेतु विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन किया गया है। यह विकासात्मक अध्ययन जहाँ कहीं कुछ बालक एक साथ खेलते हैं, उनका सामाजिक व्यवहार एक सा प्रतीत नहीं होता। बालकों के समूह में उनका एक नेता अवश्य बन जाता है। वह बालक अपने समूह की आवश्यकता को समझता है और उसके अनुसार कार्य करता है। नेतृत्व का गुण समाज में परिस्थितियों के कारण विकसित होता है।

प्रस्तावनाः

बालक का संवेगात्मक व्यवहार उसके सामाजिक विकास को प्रभावित करता है। जिद्दी, नाराज होने वाला, क्रोध करने वाला बालक समूह में ठीक प्रकार से समायोजित नहीं हो पाता। यदि यह कहा जाये कि संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास एक दूसरे से पूरक हैं, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। सामाजिक विकास पर बालक के खेल और उसके साथियों का प्रभाव पड़ता है। खेल से सहयोग, सहानुभूति, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता आदि भावनाओं का विकास होता है। सामाजिक स्तर–बालक के माता–पिता का आर्थिक–सामाजिक स्तर कैसा है, यह भी सामाजिक विकास पर प्रभाव डालता है।

निर्धन परिवार के बच्चे बिना पैसे के खेल तथा कबड्डी, चोर सिपाही आदि खेलते हैं, जबकि धनिकों के बच्चे ऐसे खेल खेलते हैं जिनमें धन लगता है। सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाला यह प्रमुख कारक है।

बालकों में अपने दल के प्रति आस्था देखी जाती है। यह आस्था कभी–कभी बड़ी प्रबल होती है। दल के नेता का आदेश हर बालक मानता है। दल समायोजन, आज्ञा–पाल, नवीन मूल्यों आदि भावनाओं को विकसित करता है। दल में रहकर वह अनेक गुणों तथा दुर्गुणों को भी सिखाता है।[1–3]

सामाजिक विकास के मानदण्ड

सामाजिक विकास के प्रमुख मानदण्ड निम्नलिखित हैं–

सामाजिक परिपक्वता– समाज के मूल्यों, नियमों, आदर्शों, अभिवृत्तियों आदि को अपनी स्थिति (Status) के अनुसार ग्रहण करना सामाजिक परिपक्वता कहलाता है। जो बालक जितना परिपक्व होता है, उससे व्यावहारिक सामाजिकता की अपेक्षा की जाती है।

सामाजिक अनुरूपता– सामाजिक मानदण्डों के अनुरूप कार्य करना सामाजिक अनुरूप कहलाता है।

सामाजिक समायोजना– जो व्यक्ति जितना अधिक सामाजिक समायोजना करता है, उसका सामाजिक विकास उतना अच्छा माना जाता है।

सामाजिक अन्तःक्रिया–बालक आपसी व्यवहार में जितना कुशल होगा, उसकी सामाजिक अन्तःक्रिया उतनी ही सशक्त होगी।

सामाजिक सहभाग–बालक सामाजिक कार्यो में किस सीमा तक भाग लेता है, इस पर उसका सामाजिक विकास निर्भर करता है।

विभिन्न अवस्थाओं में सामाजिक विकास

मानव के व्यक्तित्व का विकास करने में उसके समाज तथा वातावरण का योगदान प्रमुख रहता है। एलेक्जेन्डर के अनुसार–''व्यक्तित्व का अस्तित्व शून्य में नहीं होता। सामाजिक घटनायें तथा प्रक्रियायें मानसिक प्रक्रियाओं तथा व्यक्तित्व के प्रतिमानों को अनवरत् रूप से प्रभावित करती रही है।''[4–5]

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्वा में परिवार समुदाय, प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह, समाज, राष्ट्र आदि का महत्त्वपूर्ण योग होता है। बाल विकास में सामाजिक विकास के अध्ययन से अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों की खोज हुई हैं सोरेनसन ने सामाजिक विकास की व्याख्या करते हुए कहा है–''सामाजिक वृद्धि और विकास से हमारा तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार चले चलने की बढ़ती हुई योग्यता से है।''

समाज में जन्म लेने, विकसित होने एवं समाज में जीवन–यापन करने के लिए सामाजिाक आदर्शो तथा प्रतिमानों का अनुसरण करना ही सामाजिक विकास की ओर कदम बढ़ाना है। सामाजिकता के विकास से ही बालक में समायोजन की क्षमता उत्पन्न होती है।

शैशवावस्था में सामाजिक विकास– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जन्म से पूर्व ही बालक अप्रत्यक्ष रूप से समाज से प्रभावित होता है। जन्म लेने के पश्चात् भी समाज में अभाव में उसका अस्तित्व बना नहीं रह सकता। आरम्भ में बालक का समाज उसकी माता होती है। चार–पाँच सप्ताह में वह माता के चेहरे को देखता है। तीन–चार मास की उसकी सामाजिकता का विकास होने लगता है। इसका प्रमाण यह है कि रोता या हँसता हुआ शिशु अपरिचित व्यक्ति को देखकर शांत हो जाता है। 6–7 मास में वह अपने परिजनों को पहचानने लगता है। 9 मास की आयु में वह रेंगकर या चलकर अपनी माता के पास या परिचित के निकट चला जाता है। 2 वर्ष की अवस्था में वह अपनी आयु के बच्चों के साथ खेलना आरम्भ करता है। 3 वर्ष की आयु में वह समूह कार्यों में रुचि लेने लगता है। 6 वर्ष की आयु तक सामूहिक खेलों में भाग लेने लगता है।

इस अवस्था में लड़के–लड़कियों के सामाजिक विकास में विशेष अन्तर नहीं होता है। लड़कियाँ गुड़िया से खेलती है। लड़के अनुकरणात्मक खेल खेलते हैं। नकारात्मक प्रवृत्ति उत्पन्न होने के कारण उनमें क्रोध करना, रूठना आदि की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। अक्सर वे लड़ भी बैठते हैं परन्तु यह लड़ाई क्षणिक होती है।

शैशवावस्था में सामाजिक विकास का रूप होता है। शिशु का अपना समाज होता है। हरलॉक के अनुसार–''शिशु दूसरे बच्चों के सामूहिक जीवन को अनुकूलन, उनसे लेन–देन करना, अपने–अपने खेल के साथियों को अपनी वस्तुओं में साझीदार बनाना सीख जाता है। वह जिस समूह का सदस्य होता है, उसके स्वीकृत प्रतिमान के अनुसार अपने को बनाने की चेष्टा करता है।''

वास्तविकता यह है कि बालक के सामाजिक विकास से तात्पर्य उसका समाजीकरण (Socialization) वह असहाय से समर्थ होने लगताहै और वह सामर्थ्य ही समायोजन (Adjustment) की ओर दिशाबोध (Direction) देती है।

बाल्यावस्था में सामाजिक विकास– बाल्यावस्था का आरंभ बालक का सामाजिक जीवन में विधिवत् प्रवेश है। बाल्यावस्था में ही बालक को विद्यालय में भेजा जाता है। घर से निकलकर वह विद्यालय के वातावरण में पहुँचता है जहाँ पर वह अपने जैसे अनेक बालक देखता है। यहीं से उसमें समूह बनाने, समूह में रहने की प्रवृत्ति विकसित होती है। मित्र भाव उत्पन्न होने लगता है। लड़के तथा लड़कियाँ अलग–अलग खेलना पसन्द करने लगते हैं। घर के बाहर विभिन्न प्रकार के खेलों में लगा रहता है।

बाल्यावस्था में विषमिंगी आसक्ति का भाव माता–पिता के प्रति तो पाया ही जाता है, भाई–बहन भी एक–दूसरे को बहुत चाहते हैं। वे छोटे शिशुओं को प्यार करते हैं, गुड़ियों के ब्याह रचाते हैं, किलों का निर्माण करते हैं। नेतृत्व (Leadership) के गुण का भी विकास होने लगता है। गथरी एवं पावर्स ने स्वत्वाधिकार की भावना का भी अभ्युदय इसी अवस्था में बताते हुए कहा है–''बच्चों में स्वत्वाधिकार की भावना सबसे पहले परिवार के लोगों की या उन लोगों की निजी वस्तुओं के प्रति पैदा होती हैं जिनके सम्पर्क में वे आते हैं। सार्वजनिक सम्पत्ति का सम्मान करने की आदत वे बाद में चलकर सीखते हैं। स्वामित्व की रक्षा की भावना भी व्यक्तित्व अनुभव पर निर्भर है और इसीलिए बच्चों में यह समान रूप से नहीं पाई जाती है।''

किशोरावस्था में सामाजिक विकास–किशोरावस्था में सामाजिक विकास पर बालक की रुचियाँ, आवश्यकताओं, असुरक्षा की भावना आदि का प्रभाव पड़ता है। इस अवस्था में किशोर अपने वातावरण के प्रति जागरूक हो जाते हैं। किशोर के सामाजिक विकास में उसके शारीरिक, विकास का अधिक योग होता है। जो किशोर कमजोर, बीमार तथा अंगहीन एवं शारीरिक दोषयुक्त होते हैं, उनका व्यक्तित्व असमायोजित होता है। ऐसे बालकों को कोई अपने पास बैठाना पसन्द नहीं करता। इस अवस्था में सामाजिक विकास का स्वरूप इस प्रकार रहता है–

. किशोरावस्था में समान उद्देश्य होने के कारण स्थायी मित्रता का अभ्युदय हो जाता है। मित्रता में रुचि, अभिवृत्ति, सामाजिक तथा आर्थिक स्तर का भी ध्यान किशोर रखते हैं। घर की निकटता का कोई विशेष महत्त्व नहीं रहता है।

किशोरों को यह ज्ञान हो जाता है कि उनकी सामाजिक मान्यता किस स्थान पर है और किस पर नहीं। किशोरों को यह अनुभव होने लगता है कि माता–पिता उन्हें समझने का प्रयत्न नहीं करते और उचित स्वतंत्रता नहीं देते।

किशोरावस्था में यौन विकास के कारण लड़के–लड़कियाँ आपस में मिलना, बात करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना चाहते हैं। जहाँ पर लड़के–लड़कियों के सामाजिक संबंध स्थापित नहीं होते वहाँ पर सम–यौन (Same-sex) सम्बन्ध विकसित होते हैं।

किशोरों में सामाजिकता का विकास इस सीमा तक होता है कि वे अपने साथियों की प्रतिष्ठा के लिए त्याग करने की उद्यत हो जाता है। दल में प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए वह दल की प्रत्येक बात का समर्थन करता है।

लड़कियों का सामाजिक विकास अधिक परिपक्वता लिए होता है और वे लड़कों तथा तत्सम्बन्धी चर्चा एवं साहित्य में अधिक रुचि लेती हैं।

किशोरों में सामाजिक चेतना का विकास तीव्र गति से होता है। माता–पिता तथा व्यक्तियों से वह अपनी प्रशंसा सुनना चाहता है। रूठना और अपनी बात मनवाना उसका ध्येय रहता है। व्यवहार में स्वार्थपरता अधिक पाई जाती है।

समाजीकरण–

सामाजिक प्रतिष्ठा की आधारभूत प्रक्रिया समाजीकरण है। बालक जन्म से सामाजिक नहीं होता। वह समाज के सम्पर्क में आकर सामाजिक बनता है तथा समाज की मान्यता के अनुरूप कार्य करता है। गिलिन एवं गिलिन ने समाजीकरण की परिभाषा इस प्रकार दी है–''समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति समूह की क्रियाशील सदस्य के रूप में स्तरों के अनुसार, रूढ़ियें के अनुरूप, परम्पराओं का पालन करते हुए सामाजिक संस्थानों के प्रति समायोजन करते हुए अपना विकास करता है।'' ए० डब्ल्यू० ग्रीन के अनुसार– ''समाजीकरण

वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम सांस्कृतिक विशेषताआ, स्व (Self) को प्राप्त करते हैं।'' बोगार्डस ने कहा है–''समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति मानव कल्याण के लिए परम्परा निर्भर होकर व्यवहार करनाप सीखता है तथा ऐसा करने में, आत्म–नियंत्रण सामाजिक उत्तरदायित्व और संतुलित व्यक्तित्व का अनुभव करते हैं।''

इन परिभाषाओं का गहन अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक बनने की प्रक्रिया ही समाजीकरण है। राबिनसन क्रूसी का जहाज टूट गया था। उसे एक निर्जन टापू पर कुछ समय रहना पड़ा। उसका कहना था कि जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, वहाँ तक मेरा साम्राज्य है, परन्तु मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं रहना चाहता। स्पष्ट है, मनुष्य–मनुष्य के मध्य अनेक क्रियायें प्रतिक्रियों होती हैं और उनसे सामाजिक अधिगम (Social learning) की पुष्टि होती है। सामाजिक अधिगम में नवीन मूल्यों को ग्रहण करना प्रमुख क्रिया है। किंबल यंग (Kimball Young) ने ठीक ही कहा ह–''समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है और समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है तथा जिसके द्वारा समाज के मूल्यों और मान्यताओं को स्वीकार करने की प्रेरणा मिलती है।'' मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज मे रहकर ही अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। समाज में वह जन्म लेता है, यहीं पर उसका विकास होता है। यहीं पर वह सामाजिक सम्बन्धों के तानों–बानों में उलझा रहता है। समाज के यही ताने–बाने मनुष्य को सामाजिक बनाते हैं। समाज में जिस प्रक्रिया के अधीन बालक का समाजीकरण होता है, उसे समाजीकरण की प्रक्रिया (Process of socialisation) कहते हैं।

सन्दर्भ सूची–

1. योजना, जनवरी–2008
2. योजना, मई–2003
3. योजना, अगस्त–1998
4. योजना, जनवरी–1998
5. योजना, मार्च–2004